

ट्रिब्यूनल की स्वायत्तता और कार्यपालिका का नियंत्रण



हाल ही में सरकार ने ट्रिब्यूनल संशोधन विधेयक, 2026 पारित किया है। यह महत्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि हमारे न्यायिक तंत्र में इन्हें ऐसे निकाय के रूप में रखा गया है, जो तकनीकी और विशेषता वाले विवादों का अपेक्षाकृत तेजी से निपटारा करते हैं। इससे न्यायपालिका पर मुकदमों का बोझ कम होता है, और विशेषज्ञों की राय से न्याय होता है।

समस्या कहाँ है -

- समस्या यह है कि कई ट्रिब्यूनल का प्रशासन उन्हीं सरकारी मंत्रालयों के हाथ में रहा है, जिनके निर्णयों की समीक्षा ट्रिब्यूनल को करनी हाती है। इससे निष्पक्षता और न्यायिक स्वतंत्रता संदेह के घेरे में आती है।
- इसे देखते हुए 1997 में एल. चंद्रकुमार मामले में उच्चतम न्यायालय ने कह दिया था कि ट्रिब्यूनल के निर्णय उच्च न्यायालयों की न्यायिक समीक्षा के अधीन रहेंगे।
- 2019 में रोजर मैथ्यू मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक स्वतंत्र राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल आयोग या (नेशनल ट्रिब्यूनल कमीशन) की आवश्यकता बताई थी। इसका उद्देश्य नियुक्तियों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त रखना और न्यायिक स्वतंत्रता को मजबूत करना था।

- संसद ने न्यायालय की अनदेखी करते हुए वित्त अधिनियम, 2017 का प्रयोग करके नियुक्तियों पर सरकार के प्रभाव को और भी बढ़ा दिया था। इस पर 2025 में मद्रास बार एसोसिएशन ने सरकार को एनटीसी के गठन के लिए चार माह का समय दिया था।
- सरकार ने संसद में संशोधन विधेयक तो पारित कर दिया, लेकिन बिना किसी चर्चा के। विधेयक में ट्रिब्यूनल के सदस्यों की नियुक्ति पर केन्द्र सरकार का निर्णायक नियंत्रण रखा गया है। इतना ही नहीं, बल्कि किसी सदस्य के विरोध में कोई शिकायत आने पर मंत्रालय को ही उसकी स्क्रीनिंग के अधिकार दिए गए हैं। इसलिए समस्या केवल आयोग बना देने से समाप्त नहीं होती है। विधेयक की धारा 14 में योग्यता, नियुक्ति प्रक्रिया, वेतन और सेवा-शर्तों पर भी कार्यपालिका का पूर्ण नियंत्रण रखा गया है।

यहाँ एक बड़ा लोकतांत्रिक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि शक्तियों के पृथक्करण के पालन का क्या होगा। साथ ही नियंत्रण और संतुलन की प्रणाली को कैसे बनाए रखा जाएगा?

(‘द हिंदू’ में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित - 12/08/26)

AFEIAS